जीवन के कांटे : व्यसन

—आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

राष्ट्र की अमूल्य निधि

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारतीयों का उत्तरादायित्व अत्यधिक बढ़ गया है। देश के सामने अनेक विकट समस्याएँ हैं। उन सभी समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या है राष्ट्र की नैतिक, चारित्रिक दृष्टि से रक्षा करना। वही राष्ट्र की अमूल्य निधि है। राष्ट्र का सामूहिक विकास इसी आदर्शोन्मुखी उत्कर्ष पर निर्भर है। पवित्र चरित्र का निर्माण करना और उसकी सुरक्षा करना, सैनिक रक्षा से भी अधिक आवश्यक है। भौतिक रक्षा की अपेक्षा आध्यात्मिक परम्परा का रक्षण सार्वकालिक महत्त्व को लिए हुए है। आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त समुन्नत राष्ट्र भी नैतिकता व चारित्रिक उत्कर्ष के अभाव में वास्तविक सुख-शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। अर्थमूलक उन्नति से वैयक्तिक जीवन को भौतिक समृद्धि की दृष्टि से समाज में भले ही उच्चतम स्थान प्राप्त हो; किन्तु जन-जीवन उन्नत-समुन्नत नहीं हो सकता।

भौतिक उन्नति से वास्तविक सुख-शान्ति नहीं

भारत में अतीत काल से ही मानवता का शाश्वत मूल्य रहा है। समाजमूलक, आध्यात्मिक परम्परा के प्रबुद्ध तत्त्व-चिन्तकों ने मानवों को वैराग्यमूल त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रबल प्रेरणा दी जिससे मानवता की लहलहाती लता विश्व मण्डप पर प्रसरित होकर राष्ट्रीय विमल विचारों के तथा पवित्र चरित्र के सुमन खिला सके और उन सुमनों की सुमधुर सौरभ जन-जीवन में ताज़गी, स्फुरणा और अभिवन जागृति का संचार कर सके।

राजनैतिक श्रम से अर्जित स्वाधीनता की रक्षा धर्म, नीति, सभ्यता, संस्कृति और आत्मलक्ष्यी संस्कारों को जीवन में मूर्तरूप देने से ही हो सकती है। केवल नव-निर्माण के नाम पर विशाल बाँध, जल से पूरित सरोवर, लम्बे, चौड़े राजमार्ग और सभी सुख-सुविधा सम्पन्न भवनों का निर्माण करना अपर्याप्त है और न केवल यन्त्रवाद को प्रोत्साहन देना ही पर्याप्त है। जब तक जीवन व्यसनों के घुन से मुक्त नहीं होगा, तब तक राष्ट्र का और जीवन का सच्चा व अच्छा निर्माण नहीं हो सकता। एतदर्थ ही गीर्वाण गिरा के एक यशस्वी कवि ने कहा है—

"मृत्यु और व्यसन इन दोनों में से व्यसन अधिक हानिप्रद है। क्योंकि मृत्यु एक बार ही कष्ट देती है, पर व्यसनी व्यक्ति जीवन भर कष्ट पाता है और मरने के पश्चात् भी वह नरक आदि में विभिन्न प्रकार के कष्टों का उपभोग करता है। जबकि अव्यसनी जीते जी भी यहाँ पर सुख के सागर पर तैरता है और मरने के पश्चात् स्वर्ग के रंगीन सुखों का उपभोग करता है।"

व्यसन की परिभाषा

व्यसन शब्द संस्कृत भाषा का है जिसका तात्पर्य है 'कष्ट'। यहाँ हेतु में परिणाम का उपचार किया गया है। जिन प्रवृत्तियों का परिणाम कष्टकर हो, उन प्रवृत्तियों को व्यसन कहा गया है। व्यसन एक ऐसी आदत है जिसके बिना व्यक्ति रह नहीं सकता। व्यसनों की प्रवृत्ति अचानक नहीं होता। पहले व्यक्ति आकर्षण से करता है फिर उसे करने का मन होता है। एक ही कार्य को अनेक बार दोहराने पर वह व्यसन बन जाता है।

व्यसन बिना बोये हुए ऐसे विष-वृक्ष हैं जो मानवीय गुणों के गौरव को रौरव में मिला देते हैं। ये विष-वृक्ष जिस जीवन भूमि पर पैदा होते हैं उसमें सदाचार के सुमन खिल ही नहीं सकते। मानव में ज्यों-ज्यों व्यसनों की अभिवृद्धि होती है, त्यों-त्यों उसमें सात्त्विकता नष्ट होने लगती है। जैसे अमरबेल अपने आश्रयदाता वृक्ष के सत्त्व को चूसकर उसे सुखा देती है, वैसे ही व्यसन अपने आश्रयदाता (व्यसनी) को नष्ट कर देते हैं। नदी में तेज बाढ़ आने से उसकी तेज धारा से किनारे नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही व्यसन जीवन के तटों को काट देते हैं। व्यसनी व्यक्तियों का जीवन नीरस हो जाता है, पारिवारिक जीवन संघर्षमय हो जाता है और सामाजिक जीवन में उसकी प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती है।

व्यसनों की तुलना

व्यसनों की तुलना हम उस दलदल वाले गहरे गर्त से कर सकते हैं जिसमें ऊपर हरियाली लहलहा रही हो, फूल खिल रहे हों, पर ज्यों ही व्यक्ति उस हरियाली और फूलों से आकर्षित होकर उन्हें प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ता है त्यों ही वह दल-दल में फँस जाता है। व्यसन भी इसी तरह व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अपने चित्ताकर्षक रूप से मुग्ध करते हैं, पर व्यक्ति के जीवन को दलदल में फँसा देते हैं। व्यसन व्यक्ति की बुद्धिमता, कुलीनता, सभी सद्गुणों को नष्ट करने वाला है।

व्यसनों के अठारह प्रकार

यों तो व्यसनों की संख्या का कोई पार नहीं है। वैदिक ग्रन्थों में व्यसनों की संख्या अठारह बताई है। उन अठारह में दस व्यसन कामज हैं और आठ व्यसन क्रोधज हैं। कामज व्यसन हैं— (१) मृगया (शिकार), (२) अक्ष (जुआ), (३) दिन का शयन, (४) परनिन्दा, (५) परस्त्री-सेवन, (६) मद, (७) नृत्य सभा, (८) गीत-सभा, (९) वाद्य की महफिल, (१०) व्यर्थ भटकना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठ क्रोधज व्यसन हैं–(१) चुगली खाना, (२) अति साहस करना, (३) द्रोह करना, (४) ईर्ष्या, (५) असूया, (६) अर्थ-दोष, (७) वाणी के दण्ड, और (८) कठोर वचन।

व्यसन के सात प्रकार

जैनाचार्यों ने व्यसन के मुख्य सात प्रकार बताये हैं–(१) जुआ, (२) मांसाहार, (३) मद्यपान, (४) वेश्यागमन, (५) शिकार, (६) चोरी, (७) परस्त्री-गमन। इन सातों व्यसनों में अन्य जितने भी व्यसन हैं उन सभी का अन्तर्भाव हो जाता है।

आधुनिक युग में अश्लील चलचित्र, कामोत्तेजक, रोमांटिक और जासूसी साहित्य, बीड़ी-सिगरेट आदि भी व्यसनों की तरह ही हानिप्रद हैं।

ये व्यसन अन्धकूप के सदृश हैं जिसमें गिरकर मानव सभी प्रकार के पापकृत्य करता है। व्यसन प्रारम्भ में लघु प्रतीत होते हैं, किन्तु धीरे-धीरे हमुमान की पूँछ की तरह बढ़ते चले जाते हैं। आग की नन्हीं-सी चिनगारी घास के विशाल ढेर को नष्ट कर देती है। छोटी-सी ग्रन्थि कैंसर का भयंकर रूप ग्रहण कर लेती है। बिच्छू का जरा-सा डंक सारे शरीर को तिलमिला देता है, थोड़ा-सा विष प्राणों का अपहरण कर लेता है। वैसे ही थोड़ा-सा भी दुर्व्यसन जीवन की महान् प्रतिष्ठा को धूल में मिला देता है। अतः व्यसनों के सम्बन्ध में सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है।

(१) जूआ

बिना परिश्रम के विराट् सम्पत्ति प्राप्त करने की तीव्र इच्छा ने जूआ या द्यूत-क्रीड़ा को जन्म दिया। जूआ एक ऐसा आकर्षण है जो भूत की तरह मानव के सत्त्व को चूस लेता है। जिसको यह लत लग जाती है वह मृग-मरीचिका की तरह धन-प्राप्ति की अभिलाषा से अधिक से अधिक धन बाजी पर लगाता चला जाता है और जब धन नष्ट हो जाता है तो वह चिन्ता के सागर में डुबकियाँ लगाने लगता है। उसके प्रति किसी का भी विश्वास नहीं रहता। भारत के सभी ऋषि और महर्षियों ने जूए की निन्दा की है। ऋग्वेद में भी द्यूत क्रीड़ा को त्याज्य माना है। वहाँ द्यूत क्रीड़ा को जीवन को बरबाद करने वाला दुर्गुण बताया गया है। जूआ एक प्रकार की खुजली है, जितना उसे खुजलाओगे उतनी ही वह बढ़ती जाएगी। यह एक छुआ-छूत की बीमारी है जो दूसरों को भी लग जाती है।

सूत्रकृतांग में भी चौपड़ या शतरंज के रूप में जूआ खेलना मना किया है। क्योंकि हारा जुआरी दुगुना खेलता है। एक आचार्य ने ठीक ही कहा है जहाँ पर आग की ज्वालाएँ धधक रही हों वहाँ पर पेड़-पौधे सुरक्षित नहीं रह सकते, वैसे ही जिसके अन्तर्मानस में जुए की प्रवृत्ति पनप रही हो उसके पास लक्ष्मी रह नहीं सकती। एक पाश्चात्य चिन्तक ने भी लिखा है–जूआ लोभ का बच्चा है पर फिजूलखर्ची का माता-पिता है।

(२) मांसाहार

जूए के समान मांसाहार भी एक व्यसन है। मांसाहार मानव प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। वह किसी भी स्थिति में मानव के लिए उपयुक्त नहीं है। मांसभक्षी पशुओं के शरीर की रचना और मानव-शरीर की रचना बिलकुल भिन्न है। आधुनिक शरीरशास्त्रियों का भी स्पष्ट अभिमत है कि मानव का शरीर मांसभक्षण के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। मानव में जो मांस खाने की प्रवृत्ति है, वह उसका नैसर्गिक रूप नहीं है, किन्तु विकृत रूप है। प्राचीन आर्य मनीषी तो मांस को स्पष्ट त्याज्य बताते ही हैं। महाभारतकार कहते हैं–"मांसाहार प्राणिजन्य होने के कारण त्याज्य है, क्योंकि मांस न पेड़ पर लगता है और न जमीन में पैदा होता है" आचार्य मनु ने कहा–जीवों की हिंसा के बिना मांस उपलब्ध नहीं होता और जीवों का वध कभी स्वर्ग प्रदान नहीं करता; अतः मांसभक्षण त्यागना चाहिए।

हिंसा से पाप कर्म का अनुबन्ध होता है। इसलिए उसे स्वर्ग तो मिल ही नहीं सकता। या तो उसे इसी जन्म में उसका फल प्राप्त होता है अथवा अगले जन्म में नरक और तिर्यंच गति के भयंकर कष्ट सहन करने पड़ते हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने स्पष्ट रूप से कहा–पंगुपन, कोढ़ीपन, लूला आदि हिंसा के ही फल हैं। स्थानांग में मांसाहार करने वाले को नरकगामी बताया है। आचार्य मनु ने कहा–मांस का अर्थ ही है, जिसका मैं मांस खा रहा हूँ वह अगले जन्म में मुझे खाएगा। मांस शब्द को पृथक -पृथक लिखने से "मां" और "स" याने वह मुझे खाएगा। इस प्रकार मांस का अर्थ मनीषियों ने प्रतिपादित किया है। कबीरदास ने भी मांसाहार को अनुचित माना है और मांसाहार करने वाले को नरकगामी कहा है।

(३) मद्यपान

जितने भी पेय पदार्थ, जिनमें मादकता है, विवेक-बुद्धि को नष्ट करने वाले हैं या विवेक-बुद्धि पर परदा डाल देते हैं वे सभी 'मद्य' के अन्तर्गत आ जाते हैं। मदिरा एक प्रकार से नशा लाती है। इसलिए भांग, गाँजा, चरस, अफीम, चुरुट, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू, ताड़ी, विस्की, ब्रांडी, शेम्पेइन, जिम, रम पोर्ट, बियर, देशी और विदेशी मद्य हैं, वे सभी मदिरापान में ही आते हैं। मदिरापान ऐसा तीक्ष्ण तीर है कि जिस किसी को लग जाता है उसका वह सर्वस्व नष्ट कर देता है। मदिरा की एक-एक बूँद जहर की बूँद के सदृश है। मानव प्रारम्भ में चिन्ता को कम करने के लिए मदिरापान करता है। पर धीरे-धीरे वह स्वयं ही समाप्त हो जाता है। शराब का शौक बिजली का शॉक है। जिसे तन से, धन से और जीवन के आनन्द से बरबाद होना हो उसके लिए मदिरा की एक बोतल ही पर्याप्त हैं। मदिरा की प्रथम घूँट मानव को मूर्ख बनाती है, द्वितीय घूँट पागल बनाती है, तृतीय घूँट से वह दानव की तरह कार्य करने लगता है और चौथी घूँट से वह मुर्दे की तरह भूमि पर लुढ़क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ता है। आज तक विराट्काय समुद्र ने भी जितने मानवों को नहीं निगला है, उतने मानव मदिरा ने निगल लिये हैं। मदिरापान से नकली प्रसन्नता प्राप्त होती है और वह असली उदासी से भी खराब है।

मदिरालय : दिवालिया बैंक

एक पाश्चात्य चिन्तक ने मदिरालय की तुलना दीवालिया बैंक से की है। मदिरालय एक ऐसे दीवालिया बैंक के सदृश है जहाँ तुम अपना धन जमा करा देते हो और खो देते हो। तुम्हारा समय, तुम्हारा चरित्र भी नष्ट हो जाता है तुम्हारी स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। तुम्हारे घर का आनन्द समाप्त हो जाता है। साथ ही अपनी आत्मा का भी सर्वनाश कर देते हो।

जितने भी दुर्गुण हैं वे मदिरापान से अपने आप चले आते हैं। ऐसा कोई दुर्गुण और अपराध नहीं है जो मदिरापान से उत्पन्न न होता हो।

महात्मा गाँधी ने कहा–मैं मदिरापान को तस्कर कृत्य और वेश्यावृत्ति से भी अधिक निन्दनीय मानता हूँ; क्योंकि इन दोनों कुकृत्यों को पैदा करने वाला मद्यपान है।

मदिरापान और शुद्धि

मदिरा के सेवन से स्वास्थ्य चौपट होता है। मन-मस्तिष्क और बुद्धि का विनाश होता है। मदिरापान से उन्मत्त होकर मानव निन्दनीय कार्यों को करता है जिससे उसका वर्तमान लोक और परलोक दोनों ही विकृत हो जाते हैं। आचार्य मनु ने मदिरा को अन्न का मल कहा है। मल को पाप भी कहा है। मल-मूत्र जैसे अभक्ष्य पदार्थ हैं, खाने-पीने के लिए अयोग्य हैं, वैसे ही मदिरा भी है। व्यास ने कहा है–मदिरा का जो मानव सेवन करता है वह पापी है। यदि वह पाप से मुक्त होना चाहता है तो मदिरा को तेज गरम करके पिये जिससे उसका सारा शरीर जल करके नष्ट हो जाएगा।

ब्राह्मण के लिए यह निर्देश है कि यदि ब्राह्मण मदिरापान करने वाले व्यक्ति की गन्ध ले ले तो उसे शुद्ध होने के लिए तीन दिन तक गरम जल पीना चाहिए, उसके बाद तीन दिन गरम दूध का सेवन करे और उसके बाद तीन दिन तक केवल वायु का सेवन करे, तब वह शुद्ध होगा।

(४) वेश्यागमन

मदिरापान की तरह वेश्यागमन को भी विश्व के चिन्तकों ने सर्वथा अनुचित माना है क्योंकि वेश्यागमन ऐसा दुर्व्यसन है जो जीवन को कुपथ की ओर अग्रसर करता है। वह उस जहरीले साँप की तरह है जो चमकीला, लुभावना और आकर्षक है किन्तु बहुत ही खतरनाक है। वैसे ही वेश्या अपने शृंगार से, हावभाव और कटाक्ष से जनता को आकर्षित करती है। जिस प्रकार मछली को पकड़ने वाले काँटे में जरा-सा मधुर आटा लगा रहता है जिससे मछलियाँ उसमें फँस जाती हैं, चिड़ियों को फँसाने के लिए बहेलिया जाल के आस-पास अनाज के दाने बिखेर देता है, दानों के लोभ से पक्षीगण आते हैं और जाल में फँस जाते हैं, वैसे ही वेश्या मोहजाल में फँसाने के लिए अपने अंगोपांग का प्रदर्शन करती है, कपट अभिनय करती है जिससे कि वेश्यागामी समझता है, यह मेरे पर न्योछावर हो रही है, और वह अपना यौवन, बल, स्वास्थ्य धन सभी उस नकली सौन्दर्य की अग्नि ज्वाला में होम देता है।

वेश्या : प्रज्वलित दीपशिखा

वेश्याओं के पीछे बड़े-बड़े धनियों ने अपना धन, वैभव, स्वास्थ्य, बल आदि सर्वस्व समाप्त किया और फिर उन्हें दर-दर के भिखारी बनना पड़ा। बड़े-बड़े वैभवशाली परिवार भी वेश्यासक्ति के कारण तबाह और निराधार हो गये। एतदर्थ ही भर्तृहरि ने कहा–'वेश्या कामाग्नि की ज्वाला है जो सदा रूप-ईंधन से सुसज्जित रहती है। इस रूप-ईंधन से सजी हुई वेश्या कामाग्नि ज्वाला में सभी के यौवन, धन आदि को भस्म कर देती है।'

वेश्या वह प्रज्वलित दीपशिखा है जिस पर हजारों लोग शलभ की तरह पड़-पड़ कर भस्म हो गये। वह एक जलती मशाल है जिसने हजारों परिवारों को जलाकर साफ कर दिया। समाज की अर्थ व्यवस्था और पारिवारिक जीवन को अव्यवस्थित करने वाली वेश्या है। वेश्या आर्थिक और शारीरिक शोषण करने वाली जीती-जागती प्रतिमा है। वह समाज का कोढ़ है, मानवता का अभिशाप है, समाज के मस्तक पर कलंक का एक काला टीका है। समस्त नारी जाति का लांछन है।

(५) शिकार

शिकार मानव के जंगलीपन की निशानी है। शिकार मनोरंजन का साधन नहीं अपितु मानव की क्रूरता और अज्ञता का विज्ञापन है। क्या संसार में सभ्य मनोरंजनों की कमी है जो शिकार जैसे निकृष्टतम मनोरंजन का मानव सहारा लेता है? शिकार करना वीरता का नहीं, अपितु कायरता और क्रूरता का द्योतक है। शिकारी अपने आप को छिपाकर पशुओं पर शस्त्र और अस्त्र का प्रयोग करता है। यदि पशु उस पर झपट पड़े तो शिकारी की एक क्षण में दुर्दशा हो जायेगी। वीर वह है जो दूसरों को जख्मी नहीं करता। दूसरों को मारना, उनके जीवन के साथ खिलवाड़ करना यह तो हृदयहीनता की निशानी है। भोले-भाले निर्दोष पशुओं के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना मानवता नहीं, दानवता है।

शिकारी के पास धर्म नहीं

शिकार को जैन ग्रन्थों में "पापर्द्धि" कहा है। पापर्द्धि से तात्पर्य है पाप के द्वारा प्राप्त ऋद्धि। क्योंकि शिकारी के पास धर्म नाम की कोई चीज होती ही नहीं, वह तो पाप से ही अपनी आय करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए आचार्य ने शिकारी की मनोवृत्ति का विश्लेषण करते हुए कहा है–जिसे शिकार का व्यसन लग जाता है वह मानव प्राणी-वध करने में दया को तिलांजलि देकर हृदय को कठोर बना देता है। वह अपने पुत्र के प्रति भी दया नहीं रख पाता। शिकार के व्यसन ने अनेकों के जीवन को कष्टमय बनाया है। शिकारी एक ही पशु का वध नहीं करता, वह अहंकार के वशीभूत होकर अनेकों जीवों को दनादन मार देता है। इसीलिए आचार्य वसुनन्दी ने कहा–मधु, मद्य, मांस का दीर्घकाल तक सेवन करने वाला जितने महान् पाप का संचय करता है उतने सभी पापों को शिकारी एक दिन में शिकार खेलकर संचित कर लेता है।

(६) चोरी

शिकार की तरह चोरी भी सप्त व्यसनों में एक व्यसन है। चोरी का धन कच्चे पारे को खाने के सदृश है। जैसे कच्चा पारा खाने पर शरीर में से फूट निकलता है, वैसे ही चोरी का धन भी नहीं रहता। जो व्यक्ति चोरी करता है वह अपने जीवन को तो जोखिम में डालता ही है साथ ही वह अपने परिवार को भी खतरे में डाल देता है। चोरी करने वाला धन तो प्राप्त कर लेता है किन्तु उसका शांति, सम्मान और सन्तोष नष्ट हो जाता है। चोरी करने वाले के मन में अशांति की ज्वालाएं धधकती रहती हैं। उसका मन सदा भय से आक्रान्त रहता है। उसका आत्म-सम्मान नष्ट हो जाता है, उसमें आत्मग्लानि पनपने लगती है।

चोरी का प्रारम्भ छोटी वस्तुओं से होता है और वह आदत धीरे-धीरे पनपने लगती है। जैसे साँप का जहर धीरे-धीरे सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है वैसे ही चोरी का व्यसन-रूपी जहर भी जीवन में परिव्याप्त होने लगता है। इसलिए सभी धर्म-प्रवर्तकों ने चोरी को त्याज्य माना है। वे उसे असामाजिक कृत्य, राष्ट्रीय अपराध और मानवता के विरुद्ध उपक्रम मानते हैं। भगवान महावीर ने कहा–बिना दी हुई किसी भी वस्तु को ग्रहण न करो। यहाँ तक कि दाँत कुरेदने के लिए एक तिनका भी न लो। कोई भी चीज आज्ञा लेकर ग्रहण करनी चाहिए। वैदिक धर्म में भी चोरी का स्पष्ट निषेध है। किसी की भी कोई चीज न ग्रहण करे महात्मा ईसा ने भी कहा–'तुम्हें चोरी नहि करनी चाहिए।'

(७) परस्त्री-सेवन

भारत के तत्त्वदर्शियों ने कामवासना पर नियन्त्रण करने हेतु अत्यधिक बल दिया है। कामवासना ऐसी प्यास है, जो कभी भी बुझ नहीं सकती। ज्यों-ज्यों भोग की अभिवृद्धि होती है त्यों-त्यों वह ज्वाला भड़कती जाती है और एक दिन मानव की सम्पूर्ण सुख-शान्ति उस ज्वाला में भस्म हो जाती है।

गृहस्थ साधकों के लिए कामवासना का पूर्ण रूप से परित्याग करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि जो महान् वीर हैं, मदोन्मत्त गजराज को परास्त करने में समर्थ हैं, सिंह को मारने में सक्षम हैं, वे भी कामवासना का दमन नहीं कर पाते। एतदर्थ ही अनियन्त्रित कामवासनों को नियन्त्रित करके समाज में सुव्यवस्था स्थापित करने हेतु मनीषियों ने विवाह का विधान किया। विवाह समाज की नैतिक शान्ति, पारिवारिक प्रेम और प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने वाला एक उपाय है। गृहस्थ के लिए विधान है कि वह अपनी विधिवत् विवाहित पत्नी में सन्तोष करके शेष सभी परस्त्री आदि के साथ मैथुन विधि का परित्याग करे। विराट् रूप में फैली हुई वासनाओं को जिसके साथ विधिपूर्वक पाणिग्रहण हुआ है उसमें वह केन्द्रित करे। इस प्रकार असीम वासना को प्रस्तुत व्रत के द्वारा अत्यन्त सीमित करे।

परस्त्री से तात्पर्य अपनी धर्मपत्नी के अतिरिक्त अन्य सभी स्त्रियों से है। चाहे थोड़े समय के लिए किसी को रखा जाय या उपपत्नी के रूप में, किसी की परित्यक्ता, व्यभिचारिणी, वेश्या, दासी या किसी की पत्नी अथवा कन्या–ये सभी स्त्रियाँ परस्त्रियाँ हैं। उनके साथ उपभोग करना अथवा वासना की दृष्टि से देखना, क्रीड़ा करना, प्रेम पत्र लिखना या अपने चंगुल में फंसाने के लिए विभिन्न प्रकार के उपहार देना, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करना, उसकी इच्छा के विपरीत काम-क्रीड़ा करना, वह बलात्कार है; और इसकी इच्छा से करना परस्त्री-सेवन है।

जनतन्त्रवादी समाज के लिए व्यसनमुक्ति एक ऐसी विशिष्ट आचार पद्धति है जिसके परिपालन से गृहस्थ अपना सदाचारमय जीवन व्यतीत कर सकता है और राष्ट्रीय कार्यों में भी सक्रिय योगदान दे सकता है। दर्शन के दिव्य आलोक में ज्ञान के द्वारा चारित्र की सुदृढ़ परम्परा स्थापित कर सकता है। यह ऐसी एक आचार संहिता है जो केवल जैन गृहस्थों के लिए ही नहीं किन्तु मानव-मात्र के लिए उपयोगी है। वह नागरिक जीवन को समृद्ध और सुखी बना सकती है तथा निःस्वार्थ कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर वह राष्ट्र में अनुपम बल और ओज का संचार कर सकती है, सम्पूर्ण मानव समाज, में सुख-शान्ति और निर्भयता भर सकती है। अतः व्यसनमुक्त जीवन सभी दृष्टियों से उपयोगी और उपादेय है।

●●

मनुष्य चाहे न बदले पर उसके विचार बदलते हैं। तभी तो एक ही झटके में महाभोगी महायोगी बन जाता है।

–उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainlibrary.org